श्रमण का स्थल-जल-व्योम-विहार

☐ अनुयोगप्रवर्तक मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

श्रमण अपना जीवन संयम-साधना के लिए निर्धारित करके स्व-पर का कल्याण करता है अतः उसका अकारण नित्य निवास निषिद्ध है[1] और ग्रामानुग्राम-विहार विहित है।[2]

उत्सर्ग-विधान के अनुसार विहार के नौ विभाग हैं

शीतकाल के चार मास तथा ग्रीष्मकाल के चार मास—इस प्रकार आठ मास के आठ विहार और वर्षावास के लिए किया जानेवाला नौवां विहार। ये नवकल्पी विहार माने गये हैं। क्योंकि वर्षावास के चार मास में विहार करने का निषेध है[3] और शीत तथा ग्रीष्म के आठ मास में विहार करने का विधान है[4]।

रात्रि विहार निषिद्ध

सूर्योदय से पूर्व और सूर्यास्त के बाद विहार का निषेध है[5] अतः दिन में ही विहार करना स्वतः सिद्ध है।

विहार की विधि

श्रमण राजपथ पर चार हाथ दूर तक आगे-आगे देखता हुआ तथा त्रस-स्थावर जीवों को बचाता हुआ चले[6]।

---

१. जे भिक्खू नितियं वासं वसइ, वसंतं वा साइज्जइ। —निशीथ-उद्दे. २, सु. ३७

२. राओवरयं चरेज्ज लाढे, विरए वेदवियाऽऽयरक्खिए।
पन्ने अभिभूय सव्वदंसी जे कम्हियिव न मुच्छिए स भिक्खू॥ —उत्त. अ. १५, गा. २

३. वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतियाणि मासाणि गामे एगराइया, णयरे पंचराइया।
औप. सु. २९

४. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, वासावासासु चारए।
कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, हेमन्त-गिम्हासु चारए। —कप्प. उ. १, सु. ३७-३८

५. नो कप्पइ निग्गंथाण व निग्गंथीण वा, राओ वा वियाले वा, अद्धाणगमणं एत्तए।
—कप्प. उ. १, सु. ४६

६. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे पुरओ जुगमायं पेहमाणे दट्ठूण तसे पाणे अद्धट्टु पादं रीएज्जा, साहट्टु पादं रीएज्जा, वितिरिच्छं वा कट्टु पादं रीएज्जा, सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा, णो उज्जुयं गच्छेज्जा, ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।
से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे, अन्तरा से पाणाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा उदए वा मट्टिया वा अविद्धत्था, सति परक्कमे जाव णो उज्जुयं गच्छेज्जा, ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा। —आचा. सु. २, अ. ३, उ. १, सु. ४६९-४७०

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण अधिक तेज न चले[1] क्योंकि अधिक तेज चलनेवाला छोटे-छोटे जीवों को कैसे बचा सकता है ?

विहार का उद्देश्य

प्रत्येक ग्राम-नगर में आध्यात्मिक शान्ति की प्राप्ति का सन्मार्ग बताना[2] धर्म-जागरणा करना, कराना तथा स्वाध्याय करना[3] आदि ।

विहार की सीमा

अकारण अर्ध योजन से अधिक विहार करने का निषेध है[4] । यह एक दिन में विहार करने की सीमा का निर्धारण है ।

आर्य क्षेत्रों की चारों दिशाओं में कहाँ तक विहार करने का विधान है, यह भी स्पष्ट है ।

---

१. दवदवस्स चरई पमत्ते य अभिक्खणं ।
उल्लंघणे य चंडे य पावसणे त्ति वुच्चई ।। —उत्त. अ. १७, गा. ८

२. बुद्धे परिनिव्वुए चरे गामंगए नगरे व संजए ।
संतिमग्गं च वूहए समयं गोयम ! मा पमायए ।। —उत्त. अ. १०, गा. ३६

३. प.—'भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—कइविधा णं भंते ! जागरिया पन्नत्ता ?

उ.—गोयमा ! तिविहा जागरिया पन्नत्ता तंजहा—
१. बुद्धजागरिया, २. अबुद्धजागरिया, ३. सुदक्खुजागरिया ।

प.—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति 'तिविहा जागरिया पन्नत्ता, तंजहा—
१. बुद्धजागरिया, २. अबुद्धजागरिया, ३. सुदक्खुजागरिया' ?

उ.—गोयमा ! जे इमे अरहंता भगवंतो उप्पन्ननाण-दंसणधरा जहा खंदए [स. २, उ. १, सु. ११] जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी, एए णं बुद्धा बुद्धजागरियं जागरंति । जे इमे अणगारा भगवंतो इरियासमिता भासासमिता जाव गुत्तबंभचारी, एए णं अबुद्धा अबुद्धजागरियं जागरंति । जे इमे समणोवासगा अभिगयजीवाजीवा जाव विहरंति एते णं सुदक्खुजागरियं जागरंति । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति 'तिविहा जागरिया जाव सुदक्खुजागरिया' —भगवती स. १२, उ. १, सु. २५

जे भिक्खू चाउकाल-पोरिसिं सज्झायं न करेइ न करंतं वा साइज्जइ ।
—निशीथ उ. १९, सु. १३

पढमं पोरिसि सज्झायं बितियं झाणं झियायई ।
तइयाए भिक्खायरियं पुणो चउत्थीइ सज्झायं ।।
पढमं पोरिसि सज्झायं बितियं झाणं झियायई ।
तइयाए निद्दमोक्खं तु चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ।। —उत्त. अ. २६, गा. १२, १८

४. परमद्धजोयणाओ विहारं विहरए मुणी ।। —उत्त. अ. २६, गा. ३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व में अंग एवं मगध तक, दक्षिण में कौसंबी तक, पश्चिम में स्थूणादेश तक उत्तर में कुणाल देश तक।[1]

असीम विहार का विधान भी

जहाँ-जहाँ ज्ञान दर्शन चारित्र आदि की वृद्धि सम्भव हो वहाँ-वहाँ सर्वत्र विहार कर सकते हैं।[2]

इस विहारसीमा-निर्धारण की पृष्ठभूमि में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि ही प्रधान है। यदि आर्यक्षेत्र में भी जिस ओर विहार करने से ज्ञानादि की हानि होने की सम्भावना हो तो उस ओर विहार न करे।

यदि अनार्य कहे जानेवाले क्षेत्रों में भी जहाँ-जहाँ आर्यों जैसा वर्तन-व्यवहार हो और ज्ञानादि की वृद्धि संभव हो तो वहाँ-वहाँ विहार करना आगमानुसार निषिद्ध नहीं है।

स्थल-विहार के अपवादविधान

वर्षावास में विहार करने का यद्यपि सर्वथा निषेध है किन्तु आगमविहित कतिपय अपवाद विधानों के अनुसार श्रमण-श्रमणीगण वर्षावास में भी विहार कर सकते हैं।

ये अपवाद विधान पांच हैं—

१. किसी गांव या नगर में श्रमण वर्षावास रह रहे हों उस समय किसी संक्रामक रोग से वहाँ के निवासियों की सामूहिक अकाल मृत्यु होने लगे और उस रोग से बचने के लिए वहाँ के निवासी सामूहिक प्रव्रजन कर अन्यत्र जाने लगें तो श्रमण भी वर्षावास में विहार करके अन्यत्र जा सकते हैं।

इस अपवादविधान के मूल में—**"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"** की भावना निहित है आगमानुसार आत्मविराधना तथा उससे होनेवाली संयमविराधना न हो इसके लिए ही यह अपवाद विधान है। क्योंकि—स्वस्थ शरीर से ही संयमसाधना संभव है।

२. इसी प्रकार जहाँ श्रमण वर्षावास रह रहे हैं वहाँ और आसपास के प्रदेश में दुष्काल हो जाने से भिक्षा [आहारादि का मिलना] दुर्लभ हो जाए तो—वर्षावास में भी श्रमण विहार करके जहाँ सुभिक्ष [आहारादि का मिलना सुलभ] हो वहाँ जा सकते हैं।

इस अपवाद विधान के मूल में **"भूखे भजन न होई गोपाला"** इस लोकोक्ति की भावना निहित है।

---

१. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा—
पुरत्थिमेणं जाव अंगमगहाओ एत्तए, दक्खिणेणं जाव कोसम्बीओ एत्तए,
पच्चत्थिमेणं जाव थूणाविसयाओ एत्तए, उत्तरेणं जाव कुणालाविसयाओ एत्तए।
एयावयाव कप्पइ, एवावयाव आरिए खेत्ते।
नो से कप्पइ एत्तो बहिं, —कप्प. उ. १. सु. ५२

२. तेण परं जत्थ नाण-दंसण-चरित्ताइं उस्सप्पन्ति। —कप्प. उ. १, सु. ५२

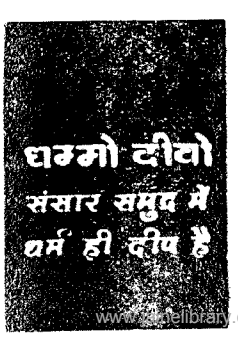

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. जहाँ श्रमण वर्षावास रह रहे हैं वहाँ आकर यदि कोई उनसे प्रार्थना करे कि जिस भाई ने आपके सन्निध्य में रहकर ज्ञानार्जन किया है वह भाई—अभी इसी चातुर्मास में प्रव्रज्या लेना चाहता है किन्तु उसके स्वजन-परिजनों की हार्दिक अभिलाषा अपने गांव में ही प्रव्रज्या-प्रदान का आयोजन करने की है—अतः आप विहार करके वहाँ पधारें। वह आपका ही अन्तेवासी रहकर संयमसाधना करने के लिए कृतसंकल्प है, इस प्रकार प्रव्रज्या प्रदान का प्रसंग—उपस्थित होने पर श्रमण वर्षावास में भी विहार करके वहाँ जा सकते हैं।

इस अपवाद विधान के मूल में—"**संयम-साधना में सहयोग करने की भावना**" निहित है।

जो संयमी जीवन जीकर अनेकानेक आत्माओं को सन्मार्गगमन की प्रेरणा प्रदान करने का संकल्प रखता है उसे सहयोग करना भी एक सर्वोत्तम कर्तव्य है।

४. जहाँ श्रमण वर्षावास रह रहे हों वहां बाढ़ आने की सम्भावना हो या बाढ़ आ जाए तो सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के प्राप्त साधनों से वर्षावास में भी अन्यत्र जा सकते हैं।

जहाँ बाढ़ आती है वहाँ का सारा जनजीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। अतः वहाँ के निवासी प्रायः सुरक्षित स्थान पर बसने के लिए चले जाते हैं।

ऐसी स्थिति में श्रमणों का अन्यत्र चला जाना ही उपयुक्त माना गया है।

इस अपवाद विधान के मूल में—"**आत्मानं सततं रक्षेत्**" का संकल्प सन्निहित है।

५. जहाँ श्रमण वर्षावास रह रहे हों वहाँ या उस प्रान्त तथा राष्ट्र पर अनार्यों का आक्रमण होने की सम्भावना हो या आक्रमण प्रारम्भ हो गया हो तो वे वर्षावास में भी अन्यत्र जा सकते हैं।

इस अपवादविधान के मूल में—"**अशान्त क्षेत्र से दूर रहने का**" विधान चरितार्थ हो रहा है।[1]

परीषह और उपसर्ग सहने की सीमा

इन अपवादविधानों से यह स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है कि जहाँ तक समाधिभाव रहे वहीं तक परीषह और उपसर्ग सहना संगत माना जा सकता है।

परीषह या उपसर्ग सहते हुए यदि असमाधि भाव आ जाय तो उस परीषह—उपसर्ग को सहने का कोई औचित्य नहीं है। क्योंकि उत्तम संहनन वालों में जितनी सहिष्णुता होती है उतनी सामान्य संहनन वालों में प्रायः नहीं देखी जाती है।

आगमों में परीषह—उपसर्ग सहने के जितने वर्णन उपलब्ध हैं वे प्रायः उसी भव से मुक्त होनेवालों के ही हैं। वे सभी वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले ही थे। अतः सामान्य संहननवालों से उनके अनुकरण का आग्रह करना विवेकपूर्ण कैसे कहा जाय ?

वर्षावास में विहार कर सकने का विधान करनेवाले ये पाँच अपवाद और भी हैं—

---

१. संकिलेसकरं ठाणं, दूरओ परिवज्जए। —दश. अ. ५, उ. १, गा. १६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. ज्ञानप्राप्ति के लिए

कहीं अतिवृद्ध श्रुतधर स्थविर विराजित हों, वे अपना अन्तिम समय अतिनिकट जानकर स्थानीय संघ से कहे—

अमुक जगह कुशाग्रबुद्धि, सुदृढधारणा शक्तिवाला श्रमण है। उसे यहाँ अतिशीघ्र आने के लिए सन्देश भेजें। मैं उसे एक श्रुत विशेष के अनुयोगों की धारणा कराना चाहता हूँ। अन्यथा मेरी धारणायें मेरे साथ ही विलीन हो जायेंगी।

इस प्रकार संघ द्वारा श्रुतधर स्थविर का सन्देश प्राप्त होने पर श्रमण वर्षावास में भी विहार करके श्रुतधर स्थविर के समीप जा सकता है।

२. दर्शनविशुद्धि के लिए

किसी विशिष्ट व्यक्ति को प्रतिबोध देना अनिवार्य हो या श्रद्धाविचलित किसी विशिष्ट व्यक्ति को श्रद्धा में सुदृढ करना हो तो वर्षावास में भी विहार करके वहाँ जा सकते हैं जहाँ वे रहते हों।

३. चारित्रवृद्धि के लिए

[क] जहाँ कहीं एक या अनेक व्यक्तियों के दीक्षित होने का आयोजन हो वहाँ जाना यदि अनिवार्य हो तो वर्षावास में भी विहार करके जा सकते हैं।

[ख] जहाँ वर्षावास हो वहाँ चारित्र में अतिक्रमादि दोषों के अधिक लगने की सम्भावना हो गई हो तो वर्षावास में भी विहार करके वहाँ जा सकते हैं जहाँ चारित्र शुद्धि या वृद्धि होना सुनिश्चित हो।

४. आचार्य के कालधर्म प्राप्त होने पर

आचार्य के कालधर्म प्राप्त होने पर जहाँ नये आचार्य की नियुक्ति हो रही हो वहाँ वर्षावास में भी विहार करके जा सकते हैं। क्योंकि आचार्य के बिना श्रमणों का रहना या विहरना सर्वथा निषिद्ध है।[1]

---

१. निग्गंथस्स णं नवडहरतरुणस्स आयरियउवज्झाए वीसंभेज्जा।
नो से कप्पइ अणायरियउवज्झायस्स होत्तए।
कप्पइ से पुव्वं आयरियं उद्दिसावेत्ता तओ पच्छा उवज्झायं।
से किमाहु भंते!
दुसंगहिए समणे निग्गंथे,
तंजहा—१ आयरिएणं, २—उवज्झाएण य॥
निग्गंथीए णं नवडहरतरुणीए आयरिय-उवज्झाए पवत्तिणी य-वीसंभेज्जा,
नो से कप्पइ अणायरिय-उवज्झाइयाए अपवत्तिणीयाए होत्तए।
कप्पइ से पुव्वं आयरियं उद्दिसावेत्ता
तओ उवज्झायं, तओ पच्छा पवत्तिणिं।
से किमाहु भंते।?
तिसंगहिया समणी निग्गंथी,
तं जहा—
१—आयरिएणं, २—उवज्झाएणं, ३—पवत्तिणीए य। —व्व. उ. ३, सु. ११-१२

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा

साथी श्रमण का स्वर्गवास होने पर जहाँ स्वधर्मी श्रमण हो वहाँ वह एकाकी श्रमण वर्षावास में भी विहार करके जा सकता है।

५. वैयावृत्य के लिए जाना आवश्यक होने पर

जहाँ कहीं जिस किसी श्रमण के प्रति अस्वस्थ होने पर वैयावृत्य के लिए अन्य किसी का न आना निश्चित हो वहाँ वर्षावास में भी विहार करके अस्वस्थ श्रमण की सेवा के लिए जा सकते हैं।

अस्वस्थ श्रमण स्वधर्मी [संभोगी] हो या न हो वैयावृत्य के लिए जाना अनिवार्य है।[1]

जलविहार

विहार करते-करते मार्ग में यदि जलप्रवाह या नदी आ जाय और उसके पानी की गहराई सामान्य हो तो उसे पार कर आगे विहार करने का विधान है।[2]

नौकाविहार

विहार करने के मार्ग में यदि गहरे पानी वाली नदी आ जाय और वह नौका द्वारा पार की जा सके तो श्रमण उसे नौका द्वारा पार करके आगे विहार करे।

---

१. वासावासं पज्जोसविताणं णो कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा-गामाणुगामं दूतिज्जित्तते।
पंचहिं ठाणेहिं कप्पति, तंजहा—
१. णाणट्ठताते, २. दंसणट्ठताते, ३. चरित्तट्ठताते,
४. आयरियउवज्झाए वा से वीसुंभेज्जा,
५. आयरियउवज्झायाण वा बहिता वेयावच्चं करणताते।

—ठाणं. अ. ५, उद्दे. २, सु. ४१३।

जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा ण गवेसइ ण गवेसंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा उम्मग्गं वा पडिपहं वा गच्छइ गच्छंतं वा साइज्जइ।

—निशीथ उद्दे. १०, सु. ४०-४१

ये सभी अपवादविधान श्रमणियों के लिए भी उपयोगी हैं।

२. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से जंघासंतारिमे उदगे सिया,
से पुव्वामेव ससीसोवरियं कायं पाए य पमज्जेज्जा,
से पुव्वामेव [ससीसोवरियं कायं पाए य] पमज्जेत्ता,
एगं पादं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा,
ततो संजयामेव जंघासंतारिमे उदगे अहारियं रीएज्जा।
से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जंघासंतारिमे उदगे अहारियं रीयमाणे णो हत्थेण हत्थं जाव अणासायमाणे—
ततो संजयामेव जंघासंतारिमे उदगे अहारियं रीएज्जा।

—आचा. सु. २, अ. ३, उद्दे. २, सु. ४९३-४९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंगा-यमुना जैसी महानदियों को भी एक मास में अधिक से अधिक तीन वार पार कर सकते हैं।[1]

अपवादविधान

वर्षावास में विहार करने के जितने अपवादविधान हैं उतने ही जलविहार या नौकाविहार के भी हैं।

अपवाद-विधानों के मर्मज्ञों का यह चिन्तन है कि आत्मविराधना, संयमविराधना या असमाधिभाव से बचने के लिए किये जानेवाले प्रयत्नों में जलविहार या नौकाविहार द्वारा होनेवाली असंख्यासंख्य अप्कायिक जीवों की विराधना भी द्रव्यहिंसा ही है। क्योंकि श्रमण का संकल्प जीवों की विराधना करने का नहीं है। बिना संकल्प के भावहिंसा नहीं होती और उसके बिना कर्मबन्धन भी नहीं होते।

यह अपवादविधान क्या अनिवार्य हैं ?

यदि अधिक आहार की आवश्यकता प्रतीत हो और जिस क्षेत्र में—श्रमण वर्षावास स्थित हो उसमें आवश्यक आहार उपलब्ध न हो तो आहार लाने के लिए नदी या जलप्रवाह को पार करके जा सकते हैं। किन्तु वह क्षेत्र वर्षावास के अवग्रह की सीमा में ही हो और प्रवाह का पानी अधिक गहरा न हो।[2]

---

१. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा,
अंतरा से णावासंतारिमे उदए सिया
से ज्जं पुण णावं जाणेज्जा—असंजते भिक्खुपडियाए किणेज्ज वा, पामिच्चेज्ज वा,
णावाए वा णावपरिणामं कट्टु,
थलातो वा णावं जलंसि ओगाहेज्जा,
जलातो वा णावं थलंसि उक्कसेज्जा,
पुण्णं वा णावं उस्सिचेज्जा,
सण्णं वा णावं उप्पीलावेज्जा,
तहप्पगारं णावं उड्ढगामिणिं वा अहेगामिणिं वा तिरियगामिणिं वा परं जोयणमेराए अद्धजोयणमेराए वा अप्पतरे वा भुज्जतरे वा णो दुरुहेज्जा गमणाए।
—आचा. सु. २, अ. ३, उ. १, सुत्र ४७४

२. वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सकोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए।
जत्थ नई निच्चोयगा निच्चसंदणा नो से कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिणियत्तए।
एरावई कुणालाए **जाव** चक्किया सिया एगं पायं जले किच्चा, एगं पायं थले किच्चा **जाव**
एवं णं कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पोडिनियत्तए।
एवं च नो चक्किया।
एवं से नो कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए।
आयारदसा—दसा. ८, सु. ९-११

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमज्ञों के लिए यह अपवाद-विधान विचारणीय है।

व्योम-विहार

जैनागमों में केवल विद्याचारण और जंघाचारण लब्धि से सम्पन्न श्रमणों के व्योम-विहार का वर्णन मिलता है।

विद्याचारणलब्धि निरन्तर छठ-छठ [बेला-बेला] तप करते हुए प्राप्त होती है।

जंघाचारणलब्धि निरन्तर अट्ठम-अट्ठम [तेला-तेला] तप करते हुए प्राप्त होती है।

चारण मुनियों की त्वरित गतिशक्ति

विद्याचारण श्रमण एक चुटकी बजावे, जितनी देर में पूरे जम्बूद्वीप की एक परिक्रमा कर सकता है।

जंघाचारण श्रमण एक चुटकी बजावे जितनी देरमें पूरे जम्बूद्वीप की सात परिक्रमायें कर सकता है।

व्योम-विहार का उद्देश्य

चारणमुनियों के व्योम-विहार का उद्देश्य केवल चैत्य वन्दन है[1]। इसके अतिरिक्त इन सूत्रों में अन्य उद्देश्य निर्दिष्ट नहीं है।

---

१. प.—कतिविधा णं भंते ! चारणा पन्नत्ता ?

उ.—गोयमा ! दुविहा चारणा पन्नत्ता, तंजहा—
विज्जाचारणा य जंघाचारणा य।

विज्जाचारणसरूवं

प.—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—विज्जाचारणे—विज्जाचारणे ?

उ.—गोयमा ! तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं विज्जाए उत्तरगुण-लद्धिं खममाणस्स विज्जाचारणलद्धी नामं लद्धी समुप्पज्जइ।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—विज्जाचारणे—विज्जाचारणे।

प.—विज्जाचारणस्स णं भंते ! कहं सीहा गती, कहं सीहे गतिविसए पण्णत्ते ?

उ.—गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं। देवे णं महिड्ढीए जाव महेसक्खे जाव इणामेव—इणामेव त्ति कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमाग-च्छेज्जा, विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तहा सीहा गती, तहा सीहे गतिविसए पण्णत्ते।

प.—विज्जाचारणस्स णं भंते ! तिरियं केवतियं गतिविसए पण्णत्ते ?

उ.—गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं माणुसुत्तरे पव्वए समोसरणं करेति, करेत्ता तहिं चेइयाइं वंदति, वंदित्ता तओ पडिनियत्तति, पडिनियत्तित्ता—इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइयाइं वंदति। विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तिरियं एवतिए गतिविसए पण्णत्ते।

[शेष टिप्पणियाँ अगले पृष्ठ पर]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्योम-विहार के उद्देश्य में मतभेद

व्योमविहार के सन्दर्भ में दो मतभेद ऐसे जटिल हैं जिनका निराकरण सहसा संभव नहीं है।

प.—विज्जाचारणस्स णं भंत्ते ! उड्ढं केवतिए गतिविसए पण्णत्ते ?

उ.—गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं नंदणवणे समोसरणं करेति, करेत्ता—तहिं चेइयाइं वंदति, वंदित्ता बितिएणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेति, करेत्ता तहिं चेइयाइं वंदति, वंदित्ता तओ पडिनियत्तति, पडिनियत्तित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इहं चेइयाइं वंदति। विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गतिविसए पण्णत्ते। से णं तस्स ठाणस्स—अणालोइयपडिक्कंते कालं करेति नत्थि तस्स आराहणा। से णं तस्स ठाणस्स आलोइय—पडिक्कंते कालं करेति अत्थि तस्स आराहणा।

जंघाचारणसरूवं

प.—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जंघाचारणे—जंघाचारणे ?

उ.—गोयमा ! तस्स णं अट्ठमंअट्ठमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स जंघाचारणलद्धी नाम लद्धी समुप्पज्जति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जंघाचारणे—जंघाचारणे।

प.—जंघाचारणस्स णं भंते ! कहं सीहा गती, कहं सीहे गतिविसए पण्णत्ते ?

उ.—गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं। देवे णं महिड्ढीए जाव महेसक्खे जाव इणामेव—इणामेव त्ति कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा, जंघाचारणस्स णं गोयमा ! तहा सीहा गती, तहा सीहे गतिविसए पण्णत्ते।

प.—जंघाचारणस्स णं भंते ! तिरियं केवतिए गतिविसए पण्णत्ते ?

उ.—गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं रुयगवरे दीवे समोसरणं करेति, करेत्ता तहिं चेइयाइं वंदति, वंदित्ता तओ पडिनियत्तमाणे बितिएणं—उप्पाएणं नंदीसरवरदीवे समोसरणं करेति, करेत्ता तहिं चेइयाइं वंदति, वंदित्ता इहमागच्छइ आगच्छित्ता इहं चेइयाइं वंदति, जंघाचारणस्स णं गोयमा ! तिरियं एवतिए गतिविसए पण्णत्ते।

प.—जंघाचारणस्स णं भंते ! उड्ढं केवतिए गतिविसए पण्णत्ते ?

उ.—गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेति, करेत्ता तहिं चेइयाइं वंदति, वंदित्ता तओ पडिनियत्तमाणे बितिएणं उप्पाएणं नंदणवणे समोसरणं करेति, करेत्ता तहिं चेइयाइं वंदति वंदित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता इह चेइयाइं वंदति, जंघाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गतिविसए पण्णत्ते। से णं तस्स ठाणस्स अणालोइय—पडिक्कंते कालं करेइ नत्थि तस्स आराहणा। से णं तस्स ठाणस्स आलोइय—पडिक्कंते कालं करेति अत्थि तस्स आराहणा॥

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरइ॥

—भगवतीसूत्र-श. २० उद्दे. ९ सु. १-९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम मत— मूर्तिपूजक व्याख्याकार "चैत्यवन्दन" से "जिनप्रतिमा" आदि का वन्दन व्यक्त करते हैं।

द्वितीय मत—स्थानकवासी व्याख्याकार "चैत्यवन्दन" से "ज्ञानियों की स्तुति" व्यक्त करते हैं।

दोनों पक्ष अपनी अपनी मान्यताओं पर अटल हैं।

चैत्यवंदन के प्रस्थापित सूत्र

चैत्यवन्दन को आगम-प्रमाण से सिद्ध करने के लिए एक आगम प्रति में कुछ सूत्र प्रस्थापित किए। उस प्रति की लिपिकों ने जितनी प्रतिलिपियाँ कीं, उन सबमें वे सूत्र अमर हो गए। यह अमोघ प्रयोग अनेकानेक सूत्रों को प्रस्थापित करने के लिए अपने अपने युग में सबने अपनाया है।

स्थानकवासियों को प्रस्थापित सूत्रोंवाली ही प्रतियाँ मिलीं अतः अपनी मान्यता का अर्थ करके उन सूत्रों को स्वीकार कर लिया।

[१] जिस समय भरत ऐरवत एवं महाविदेह में चारणलब्धिसम्पन्न श्रमण विद्यमान थे, उस समय तो साक्षात् जिनदेव भी वहाँ विद्यमान थे।

महाविदेह में तो शाश्वत विहरमान जिन भी विद्यमान थे, वे भी उत्कृष्ट १७० तो थे ही, फिर भी वे चारण श्रमण मनुष्य क्षेत्र से बाहर जाकर चैत्यवन्दन करते थे।

इसका फलितार्थ यह हुआ कि—प्रत्यक्ष जिनवन्दन से भी मनुष्यक्षेत्र से बाहर के चैत्य-वन्दन का महत्त्व अधिक है।

'चारणमुनियों के व्योमविहार की त्वरित गतिशक्ति देखते हुए नन्दीश्वर द्वीप या पण्डगवन तक जाने आने में एक या दो उडानों का कथन भी संगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि एक चुटकी बजावे जितने समय में जम्बूद्वीप की सात परिक्रमा करने वालों के लिए उक्त दूरी तक तिरछे या ऊपर जाना तो सामान्य कार्य है।

प्रस्थापित सूत्रों की कसौटी

[२] चैत्यवन्दन संवर का कृत्य है या निर्जरा का ?

यदि संवर का कृत्य है तो नन्दीश्वर द्वीप या पण्डगवन तक जाने-आने में होने वाली असंख्यासंख्य वायुकायिक जीवों की हिंसा का प्रायश्चित्त करने की क्या आवश्यकता है ?

संवर के बिना निर्जरा नहीं होती, इस सिद्धान्त के अनुसार लब्धिप्रयोग के प्रमाद का प्रायश्चित्तविधान कहाँ तक संगत है।

चैत्यवन्दन के लिए लब्धि-प्रयोग अनिवार्य है, अतः प्रमादरूप अधर्म से चैत्यवन्दन धर्म की स्थापना हो गई है।

इस प्रकार ये सूत्र प्रस्थापित प्रतीत होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये स्थलजलव्योम विहार आगमानुसार सिद्ध हैं। इन विहारों में होनेवाली हिंसा द्रव्य-हिंसा है। इस हिंसा का प्रायश्चित्त इरियावही प्रतिक्रमण है। जो एक सामान्य प्रायश्चित्त है।

वर्तमान में अपवाद-विधान

वर्तमान में इन अपवाद विधानों की किसे कितनी जानकारी है, कौन किन स्थितियों में इन अपवादविधानों का किस सीमा तक उपयोग करता है, यह सर्वेक्षण योग्य है।

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org